रोज़ा और उसका असली मक़सद

सय्यद अबुल आला मौदूदी

अनुवादक

कौसर यज़दानी

रोज़ा

नमाज़ के बाद दूसरी इबादत जो अल्लाह तआला ने मुसलमानों पर फ़र्ज़ की है "रोज़ा" है। रोज़ा से मुराद यह है कि सुबह से शाम तक आदमी खाने-पीने और औरत के पास जाने से परहेज करे। नमाज़ की तरह यह इबादत भी शुरू से तमाम पैग़म्बरों की शरीअत में फ़र्ज़ रही है। पिछली जितनी उम्मतें गुज़री हैं, सब इसी तरह रोज़ा रखती थीं, जिस तरह उम्मते मुहम्मदी रखती है, अलबत्ता रोज़े के हुक्मों और रोज़े की तायदाद और रोज़े रखने की मुद्दत में शरीअतों के बीच फ़र्क़ रहा है। आज भी हम देखते हैं कि अक्सर मज़हबों में रोज़ा किसी-न-किसी शक्ल में मौजूद ज़रूर है। यह बात अलग है कि लोगों ने अपनी ओर से बहुत-सी बातें मिलाकर इसकी शक्ल बिगाड़ दी है। क़ुरआन मजीद में है –

"ऐ मुसलमानो ! तुम्हारे ऊपर रोज़ा फ़र्ज़ किया गया है, जिस तरह तुमसे पहले की उम्मतों पर फ़र्ज़ किया गया था।"

इस आयत से मालूम होता है कि अल्लाह तआला की ओर से जितनी शरीअतें आई हैं, वह कभी रोज़े की इबादत से ख़ाली नहीं रही हैं।

ग़ौर कीजिए कि आख़िर रोज़े में क्या बात है, जिसकी वजह से अल्लाह तआला ने इस इबादत को हर ज़माने में फ़र्ज़ किया है ?

इस्लाम का असल मक़सद इन्सान की पूरी ज़िन्दगी अल्लाह की इबादत बना देना है। इन्सान 'अब्द' यानी बन्दा पैदा हुआ है और 'अब्दियत' यानी बन्दगी उसकी फ़ितरत में दाख़िल है। इसलिए इबादत यानी ख़्याल व अमल में अल्लाह की बन्दगी करने से कभी एक क्षण के लिए भी उसको आज़ाद न होना चाहिए। उसे अपनी ज़िन्दगी के हर मामले में

हमेशा और हर वक़्त यह देखना चाहिए कि अल्लाह तआला की रज़ा और ख़ुशनूदी किस चीज़ में है और उसका ग़ज़ब और नाराज़गी किस चीज़ में। फिर जिस ओर ख़ुदा की ख़ुशी हो उधर जाना चाहिए और जिस ओर उसका ग़ज़ब और उसकी नाराज़ी हो, उससे इस तरह बचना चाहिए, जिस तरह कि आग के अंगारे से कोई बचता है। जो तरीक़ा अल्लाह ने पसन्द किया हो, उस पर चलना चाहिए और जिस तरीक़े को उसने पसन्द न किया हो, उससे भागना चाहिए। जब इन्सान की सारी ज़िन्दगी इस रंग में रंग जाये, तब समझो कि उसने अपने मालिक की बन्दगी का हक़ अदा किया। क़ुरआन में है–

"मैंने जिन्नों और इन्सानों को पैदा इसलिए किया है कि वे मेरी बन्दगी करें।"

नमाज़, रोज़ा हज और ज़कात के नाम से जो इबादतें हम पर फ़र्ज़ की गई हैं उनका असली मक़सद भी उसी बड़ी इबादत के लिए हमको तैयार करना है। उनको फ़र्ज़ करने का मतलब यह नहीं है कि अगर तुमने दिन में पांच वक़्त रुकूअ और सज्दा कर लिया और रमज़ान में तीस दिन तक सुबह से शाम तक भूख-प्यास बरदाश्त कर ली और मालदार होने की सूरत में सालाना ज़कात और ज़िन्दगी में एक बार हज अदा कर लिया, तो अल्लाह का जो कुछ हक़ तुम पर था, वह अदा हो गया और इसके बाद तुम उसकी बन्दगी से आज़ाद हो गये कि जो चाहो करते फिरो, बल्कि असल में इन इबादतों को फ़र्ज़ करने की ग़रज़ यही है कि उनके ज़रिए से आदमी की तर्बियत की जाए और उसको इस क़ाबिल बनाया जाये कि उसकी पूरी ज़िन्दगी ख़ुदा की इबादत बन जाये। आइये ! अब इसी मक़सद को सामने रखकर हम देखें कि रोज़ा किस तरह आदमी को उस बड़ी इबादत के लिए तैयार करता है।

रोज़े के सिवा दूसरी जितनी इबादतें हैं, वे किसी न किसी तरह ज़ाहिरी

हरकत से अदा की जाती हैं, जैसे नमाज़ में आदमी उठता-बैठता है और रुकूअ और सज्दा करता है, जिसको हर आदमी देख सकता है। हज में वह एक लम्बा सफ़र करके जाता है और फिर हज़ारों और लाखों आदमियों के साथ सफ़र करता है। ज़कात भी कम-से-कम एक आदमी देता है और दूसरा आदमी लेता है। इन सब इबादतों का हाल छिप नहीं सकता। अगर आप अदा करते हैं, तब भी दूसरों को मालूम होता है, अगर अदा नहीं करते तब भी लोगों को मालूम हो ही जाता है। इसके बरख़िलाफ़ रोज़ा ऐसी इबादत है, जिसका हाल ख़ुदा और बन्दे के सिवा किसी दूसरे पर नहीं खुल सकता। एक आदमी सबके सामने सहरी खाए और इफ़्तार के वक़्त तक ज़ाहिर में कुछ न खाए-पिए, मगर छिपकर पानी पी जाए या कुछ चोरी-छिपे खा ले तो ख़ुदा के सिवा किसी को भी इसकी ख़बर नहीं हो सकती। सारी दुनिया यही समझती रहेगी कि वह रोज़े से है और वह हक़ीक़त में रोज़े से न होगा।

रोज़े की इस हैसियत को सामने रखिए फिर ग़ौर कीजिए कि जो आदमी हक़ीक़त में रोज़ा रखता है और उसमें चोरी-छिपे भी कुछ नहीं खाता-पीता, सख़्त गर्मी की हालत में भी जबकि आंखों में दम आ रहा हो, कोई चीज़ खाने का इरादा तक नहीं करता, उसे अल्लाह तआला के आलिमुलग़ैब होने पर कितना ईमान है। किस क़द्र ज़बर्दस्त यक़ीन के साथ वह जानता है कि उसकी हरकत चाहे सारी दुनिया से छिप जाए, मगर अल्लाह से नहीं छिप सकती। ख़ुदा का कैसा ख़ौफ़ उसके दिल में है कि बड़ी-से-बड़ी तकलीफ़ उठाता है, मगर सिर्फ़ अल्लाह के ख़ौफ़ की वजह से कोई ऐसा काम नहीं करता जो उसके रोज़े को तोड़ने वाला हो। कितना मज़बूत यक़ीन है उसको आख़िरत की जज़ा व सज़ा पर कि महीने भर में वह कम-से-कम तीन सौ साठ घण्टे के रोज़े रखता है और इस दौरान में कभी एक मिनट के लिए भी उसके दिल में आख़िरत के बारे में कोई शक का शायबा तक नहीं आता।

अगर उसे इस बात में ज़रा भी शक होता कि आख़िरत होगी या न होगी और उसमें अज़ाब व सवाब होगा या न होगा, तो वह कभी अपना रोज़ा पूरा नहीं कर सकता था। शक हो जाने के बाद यह मुमकिन नहीं है कि आदमी ख़ुदा के हुक्म बजा लाने में कुछ न खाने और पीने के इरादे पर क़ायम रह जाए।

इस तरह अल्लाह तआला हर साल पूरे एक महीने तक मुसलमान के ईमान को लगातार आज़माइश में डालता है और इस आज़माइश में जितना-जितना आदमी पूरा उतरता जाता है, उतना ही उतना उसका ईमान मज़बूत होता जाता है। यह गोया आज़माइश की आज़माइश है और ट्रेनिंग की ट्रेनिंग। आप जब किसी आदमी के पास अमानत रखवाते हैं, तो गोया उसकी ईमानदारी की आज़माइश करते हैं। अगर वह इस आज़माइश में पूरा उतरे और अमानत में ख़ियानत न करे, तो उसके अन्दर अमानतों का बोझ संभालने की और ज़्यादा ताक़त पैदा हो जाती है और वह ज़्यादा अमीन बनता चला जाता है। इसी तरह अल्लाह तआला भी लगातार एक महीने तक रोज़ाना बारह-बारह और चौदह-चौदह घन्टों तक आपके ईमान को कड़ी आज़माइश में डालता है और जब इस आज़माइश में आप पूरे उतरते हैं, तो आपके अन्दर इस बात की क़ाबलियत पैदा होने लगती है कि अल्लाह से डर कर दूसरे गुनाहों से परहेज़ करें। अल्लाह को आलिमुलग़ैब (ग़ैब का जानने वाला) जानकर चोरी-छिपे भी उसके क़ानून को तोड़ने से बचें और हर मौक़े पर क़ियामत का वह दिन आपको याद आ जाया करे, जब सब कुछ खुल जायेगा और बिना किसी रू-रियायत के भलाई का भला और बुराई का बुरा बदला मिलेगा। यही मतलब है क़ुरआन की इस आयत का कि –

> "ऐ ईमान वालो ! तुम्हारे ऊपर रोज़े फ़र्ज़ किये गए हैं, जिस तरह तुमसे पहले लोगों पर फ़र्ज़ किये गये थे, शायद कि तुम परहेज़गार बन जाओ।" –सूरा बक़रा : २३

रोज़े की एक दूसरी ख़ूबी भी है और वह यह है कि यह एक लम्बी मुद्दत तक शरीअत के हुक्मों की लगातार इताअत कराता है। नमाज़ की मुद्दत एक वक़्त में कुछ मिनट से ज़्यादा नहीं होती। ज़कात अदा करने का वक़्त साल भर में सिर्फ़ एक बार आता है हज में अलबत्ता लम्बी मुद्दत लगती है, मगर इसका मौक़ा ज़िन्दगी भर में एक बार आता है और वह भी सबके लिए नहीं। इन सबके बरख़िलाफ़ रोज़ा हर साल पूरे एक महीने तक दिन-रात शरीअते मुहम्मदी की पैरवी की मश्क़ कराता है। सुबह सहरी के लिए उठो, ठीक फ़लां वक़्त पर खाना-पीना सब बन्द कर दो। दिन भर फ़लां-फ़लां काम कर सकते हो और फ़लां-फ़लां नहीं कर सकते। शाम को ठीक फ़लां वक़्त पर इफ़्तार करो, फिर खाना खाकर आराम करो, फिर तरावीह के लिए दौड़ो। इस तरह हर साल पूरे महीने भर, सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक मुसलमान लगातार फौजी सिपाहियों की तरह पूरे क़ायदे और ज़ाब्ते में बांधकर रखा जाता है और फिर ग्यारह महीने के लिए उसे छोड़ दिया जाता है ताकि जो तर्बियत इस महीने में उसने हासिल की है, उसके असरात ज़ाहिर हों और जो कमी पाई जाए, वह फिर दूसरे साल की ट्रेनिंग में पूरी की जाए।

इस तरह की ट्रेनिंग के लिए एक-एक आदमी को अलग-अलग लेकर तैयार करना किसी तरह मुनासिब नहीं होगा। फ़ौज में भी आप देखते हैं कि एक-एक आदमी को अलग-अलग परेड नहीं कराई जाती, बल्कि पूरी फ़ौज एक साथ परेड करती है। सबको एक वक़्त एक बिगुल की आवाज़ पर उठना और बिगुल की आवाज़ पर काम करना होता है, ताकि उसमें जमाअत बनकर एक साथ काम करने की आदत हो और उसके साथ ही वे सब एक दूसरे की ट्रेनिंग में मददगार भी हों, यानी एक आदमी की ट्रेनिंग में जो कुछ कमी रह जाय उसकी कमी को दूसरा और दूसरे की कमी को तीसरा पूरा कर दे। इसी तरह इस्लाम

में रमज़ान का महीना रोज़े की इबादत के लिए मख़्सूस किया गया और तमाम मुसलमानों को हुक्म दिया गया कि एक वक़्त में सबके सब मिलकर रोज़ा रखें। उसने अलग-अलग की इबादत को एक साथ की इबादत बना दिया। जिस तरह एक तादाद को लाख से ज़रब करो, तो लाख की ज़बर्दस्त तादाद बन जाती है, उसी तरह एक आदमी के रोज़ा रखने से जो अख़्लाक़ी और रूहानी फ़ायदे हो सकते हैं, लाखों करोड़ों आदमियों के मिलकर रोज़ा रखने से वह लाखों करोड़ों गुना बढ़ जाते हैं। रमज़ान का महीना पूरी फ़िज़ा को नेकी और परहेज़गारी की रूह से भर देता है। पूरी क़ौम में गोया तक़्वा और परहेज़गारी की खेती हरी-भरी हो जाती है। हर आदमी न सिर्फ़ गुनाहों से बचने की कोशिश करता है, बल्कि अगर उसमें कोई कमज़ोरी होती है तो उसके दूसरे बहुत से भाई जो इसी तरह के रोज़ेदार हैं, उसके मददगार बन जाते हैं। हर आदमी को रोज़ा रखकर गुनाह करने में शर्म आती है और हर एक के दिल में ख़ुद ही यह ख़्वाहिश उभरती है कि कुछ भलाई के काम करे, किसी ग़रीब को खाना खिलाये, किसी नंगे को कपड़ा पहनाये, किसी दुःखी की मदद करे, किसी जगह अगर कोई नेक काम हो रहा हो, तो उसमें हिस्सा ले और अगर कहीं खुल्लम-खुल्ला बुराई हो रही हो, तो उसे रोके। नेकी और तक़्वा का एक आम माहौल पैदा हो जाता है और भलाइयों के फूलने-फलने का मौसम आ जाता है। जिस प्रकार आप देखते हैं कि हर ग़ल्ला अपने मौसम आने पर ख़ूब फलता-फूलता है और हर ओर खेतों पर छाया नज़र आता है। इसीलिए नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि–

"आदमी का हर अमल ख़ुदा के यहां कुछ न कुछ बढ़ता है। एक नेकी दस गुनी से सात सौ गुनी तक फूलती-फलती है, मगर अल्लाह तआला फ़रमाता है कि रोज़ा इससे अलग है। वह ख़ास मेरे लिए है और मैं उसका जितना चाहता हूं,

बदला देता हूं।" —हदीस

इस हदीस से मालूम हुआ कि नेकी करने वालों की नीयत और नेकी के नतीजों के लिहाज़ से तमाम आमाल फूलते-फलते हैं और उनकी तरक़्क़ी के लिए एक हद मुक़र्रर है, लेकिन रोज़े की तरक़्क़ी के लिए कोई हद मुक़र्रर नहीं। रमज़ान चूंकि नेकी और भलाई के फूलने-फलने का मौसम है और इस मौसम में एक आदमी नहीं, बल्कि लाखों करोड़ों मुसलमान मिलकर इस नेकी के बाग़ को पानी देते हैं, इसलिए वह बेहद बे-हिसाब बढ़ सकता है। जितनी ज़्यादा नेकनीयती के साथ इस महीने में आप अमल करेंगे, जिस क़द्र ज़्यादा बरकतों से ख़ुद फ़ायदा उठायेंगे और अपने दूसरे भाइयों को फ़ायदा पहुंचाएंगे और फिर जिस क़द्र ज़्यादा इस महीने के असरात बाद के ग्यारह महीनों में बाक़ी रखेंगे, उतना ही यह फूले-फलेगा और इसके फूलने-फलने की कोई हद नहीं है। आप ख़ुद अपने अमल से इसको महदूद कर लें, तो यह आपका अपना क़ुसूर है।

रोज़े के यह असरात व नतायज सुनकर आप में से हर आदमी के दिल में यह सवाल पैदा होगा कि यह असरात आज कहां हैं। हम रोज़े भी रखते हैं मगर ये नतीजे ज़ाहिर नहीं होते। इसकी एक वजह तो आपसे बयान की जा चुकी है और वह यह है कि इस्लाम के अंगों को अलग-अलग कर देने के बाद और बहुत-सी नई चीज़ें इसमें मिला देने के बाद आप उन नतीजों की उम्मीद नहीं कर सकते जो पूरे निज़ाम की बंधी हुई सूरत ही में ज़ाहिर हो सकते हैं। इसके अलावा दूसरी वजह यह है कि इबादत के बारे में आपके सोचने का ढंग बिलकुल बदल गया है। अब आप यह समझने लगे हैं कि सिर्फ़ सुबह से शाम तक कुछ न खाने-पीने का नाम इबादत है और जब यह काम आपने कर लिया तो इबादत पूरी हो गई। इसी तरह दूसरी इबादतों की भी केवल ज़ाहिरी शक्ल को आप इबादत समझते हैं और इबादत की असली

रूह जो आपके हर अमल में होनी चाहिए, इससे आमतौर पर आपके ९९ प्रतिशत बल्कि इससे भी ज़्यादा आदमी ग़ाफ़िल हैं। इसी वजह से ये इबादतें अपने पूरे फ़ायदे नहीं दिखातीं, क्योंकि इस्लाम में तो नीयत और फ़हम और समझ-बूझ ही पर सब कुछ मुनहसिर है।

रोज़े का असली मक़्सद

हर काम जो इन्सान करता है, उसमें दो चीज़ें ज़रूर ही हुआ करती हैं। एक चीज़ तो मक़्सद है, जिसके लिए काम किया जाता है और दूसरी चीज़ उस काम की वह ख़ास शक्ल है जो इस मक़्सद को हासिल करने के लिए इख़्तियार की जाती है। मिसाल के तौर पर खाना खाने के काम को लीजिए। खाने से आपका मक़्सद ज़िन्दा रहना और जिस्म की ताक़त को बहाल रखना है। इस मक़्सद को हासिल करने की सूरत यह है कि आप निवाले बनाते हैं, मुंह में ले जाते हैं, दांतों से चबाते हैं और हलक़ से नीचे उतारते हैं। चूंकि इस मक़्सद को हासिल करने के लिए सबसे ज़्यादा फ़ायदेमन्द और सबसे बेहतरीन तरीक़ा यही हो सकता था, इसलिए आपने इसी को इख़्तियार किया। लेकिन आप में से हर आदमी जानता है कि असल चीज़ वह मक़्सद है, जिसके लिए खाना खाया जाता है, न कि खाने के काम की यह शक्ल। अगर कोई आदमी लकड़ी का बुरादा या राख या मिट्टी लेकर उसके निवाले बनाये और मुंह में ले जाये और दांतों से चबाकर हलक़ से नीचे उतार ले, तो आप उसे क्या कहेंगे? यही न कि उसका दिमाग़ ख़राब है। क्यों? इसलिए कि वह खाने के असल मक़्सद को नहीं समझता और इस भ्रम में फंसा हुआ है कि बस खाने के काम की इन चार ज़ाहिरी बातों को अदा कर देने ही का नाम खाना खाना है। इसी तरह आप उस आदमी को भी पागल ठहरायेंगे जो रोटी खाने के बाद फ़ौरन ही हलक़ में उंगली डालकर क़ै कर देता हो और फिर शिकायत करता हो कि

ी खाने के जो फ़ायदे बयान किये जाते हैं, वे मुझे हासिल ही नहीं
ते, बल्कि उल्टा मैं तो रोज़-ब-रोज़ दुबला होता जा रहा हूं और मर
ने की नौबत आ गई है। यह मूर्ख अपनी इस कमज़ोरी का इल्ज़ाम
ी और खाने पर रखता है। हालांकि बेवकूफ़ी उसकी अपनी है। उसने
पनी नादानी से यह समझ लिया कि खाने के काम में ये जो चन्द
हिरी बातें हैं, बस इन्हीं को अदा कर देने ही से ज़िन्दगी की ताक़त
सिल हो जाती है। इसलिए उसने सोचा कि रोटी का बोझ अपने मेदे
क्यों रखे। क्यों न इसे निकाल फेंका जाये, ताकि पेट हल्का हो जाये।
ने के काम की ज़ाहिरी सूरत तो मैं अदा ही कर चुका हूं। यह बेवकूफ़ी
ख़्याल जो उसने क़ायम किया और फिर उसकी पैरवी की, इसकी
ा भी तो आख़िर उसी को भुगतना चाहिए। उसको जानना चाहिए
कि रोटी पेट में जाकर हज़म न हो और ख़ून बनकर सारे जिस्म
फैल न जाये, उस वक़्त तक ज़िन्दगी की ताक़त हासिल नहीं हो
कती। खाने के ज़ाहिरी काम भी यों तो ज़रूरी हैं, क्योंकि इनके बिना
ी मेदे तक नहीं पहुंच सकती, मगर सिर्फ़ इन ज़ाहिरी कामों के अदा
: देने से काम नहीं चल सकता। इन कामों में कोई जादू भरा हुआ
ं है कि उन्हें अदा करने से बस जादुई तरीक़े पर आदमी की रगों
ख़ून दौड़ने लगता हो। ख़ून पैदा करने के लिए तो अल्लाह ने जो
नून बनाया है, उसी के मुताबिक़ वह पैदा होगा। उसको तोड़ दोगे
अपने आपको ख़ुद ही मौत के घाट उतारोगे।

यह मिसाल इस तफ़्सील के साथ आपके सामने बयान की गई है,
पर आप ग़ौर करें तो आपकी समझ में आ सकता है कि आज
पकी इबादतें क्यों बेअसर हो गईं? आपकी सबसे बड़ी ग़लती यही
कि आपने नमाज़ रोज़ों के अरकान की ज़ाहिरी सूरतों ही को असल
ादत समझ रखा है और इस गुमान में फंस गये हैं कि जिसने ये अरकान
तरह अदा कर दिये, उसने बस अल्लाह की इबादत कर दी। आपकी
साल उस आदमी की-सी है जो खाने के चारों अरकान यानी निवाले

बनाना, मुंह में रखना, चबाना, हलक़ से नीचे उतार देना, बस इन चारों के मजमूए को खाना समझता है और यह ख़्याल करता है, जिस ये चार अरकान अदा कर दिये, उसने खाना खा लिया और खाने फ़ायदे उसको हासिल होने चाहिएं, भले ही उसने उन अरकान के स मिट्टी और पत्थर अपने पेट में उतारे हों, या रोटी खाकर फ़ौरन क़ै दी हो। अगर हक़ीक़त में लोग इस ग़लत गुमान में फंस नहीं गए तो बताइये कि यह क्या माजरा है कि जो रोज़ेदार सुबह से शाम त अल्लाह की इबादत में मशग़ूल रहता है, वह ठीक इस इबादत हालत में झूठ कैसे बोलता है? ग़ीबत किस तरह करता है? बात-ब पर लड़ता क्यों है? उसकी ज़ुबान से गालियां क्यों निकलती हैं? लोगों का हक़ कैसे मार खाता है? हराम खाने और खिलाने का क किस तरह कर लेता है और फिर यह सब काम करके भी अपने नज़दी यह कैसे समझता है कि मैंने ख़ुदा की इबादत की है? क्या उस मिसाल उस आदमी की-सी नहीं है, जो राख और मिट्टी खाता है अ सिर्फ खाने के चार अरकान अदा कर देने को समझता है कि खा इसी को कहते हैं।

फिर बताइए कि यह क्या माजरा है कि रमज़ान भर में तक़रीब ३६० घण्टे ख़ुदा की इबादत करने के बाद जब आप फ़ारिग़ होते तो इस पूरी इबादत के तमाम असरात शव्वाल की पहली तारीख़ को ख़त्म हो जाते हैं? अन्य लोग अपने त्योहारों में जो कुछ क हैं, वही सब आप ईद में करते हैं। हद यह है कि शहरों में तो के दिन बदकारी और शराबनोशी तक होती है और कुछ ज़ालिम ऐसे हैं, जो रमज़ान के ज़माने में दिन में रोज़ा रखते हैं और रात शराब पीते हैं और ज़िना करते हैं। आम मुसलमान ख़ुदा के फ़ज़्ल इतने बिगड़े हुए तो नहीं, मगर रमज़ान ख़त्म होने के बाद आप में कितने ऐसे हैं जिनके अन्दर ईद के दूसरे दिन भी तक़्वा और परहेज़ग का कोई असर बाक़ी रहता हो? ख़ुदा के क़ानूनों की ख़िलाफ़वर्ज़ी

न-सी कसर उठा रखी जाती है? नेक कामों में कितना हिस्सा लिया
ता है? और नफ़्सानियत में क्या कमी आ जाती है?
सोचिए और ग़ौर कीजिए कि इसकी वजह आख़िर क्या है? यक़ीन
साथ कहा जा सकता है कि इसकी वजह सिर्फ़ यह है कि आपके
ाग़ में इबादत का मफ़हूम और मतलब ही ग़लत हो गया है। आप
समझते हैं कि सहरी से लेकर मग़रिब तक कुछ न खाने और पीने
नाम रोज़ा है और बस यही इबादत है। इसीलिए रोज़े की तो आप
हिफ़ाज़त करते हैं। ख़ुदा का ख़ौफ़ आपके दिल में इस क़द्र होता
के जिस चीज़ से रोज़ा टूटने का ज़रा भी ख़तरा हो उससे भी आप
ते हैं। अगर जान पर भी बन जाय तब भी रोज़ा तोड़ने में झिझक
ो है। लेकिन आप यह नहीं जानते कि यह भूखा-प्यासा रहना असल
दत नहीं, बल्कि इबादत की सूरत है और यह सूरत मुक़र्रर करने
मक़सद यह है कि आपके अन्दर ख़ुदा का ख़ौफ़ और ख़ुदा की
ब्बत पैदा हो और आपके अन्दर इतनी ताक़त पैदा हो जाए कि जिस
ा में दुनिया भर के फ़ायदे हों, मगर ख़ुदा नाराज़ होता हो, उससे
ने नफ़्स पर जब्र करके बच सकें और जिस चीज़ में हर तरह के
र और नुक़्सान हों, मगर ख़ुदा उससे ख़ुश होता हो, उस पर आप
ने नफ़्स को मजबूर करके तैयार कर सकें। यह ताक़त इसी तरह
हो सकती थी कि आप रोज़े के मक़सद को समझने और महीने
तक अपने ख़ुदा के ख़ौफ़ और ख़ुदा की मुहब्बत में अपने नफ़्स
ख़्वाहिशों से रोकने और ख़ुदा की रज़ा के मुताबिक़ चलाने की
मश्क़ की है, उससे काम लेते। मगर आप तो रमज़ान के बाद ही
मश्क़ को और इन ख़ूबियों को, जो इस मश्क़ से पैदा होती हैं,
तरह निकाल फेंकते हैं जैसे खाना खाने के बाद कोई आदमी उंगली
कर क़ै कर दे। बल्कि आप में से कुछ लोग तो रोज़ा खोलने के
ही दिन भर की परेशानी को उगल देते हैं। फिर आप ही बताइए
मज़ाः और उसके रोज़े कोई जादू तो नहीं हैं कि बस उसकी ज़ाहिरी

शक्ल पूरी कर देने से आपको वह ताक़त हासिल हो जाये, जो हक़ीक़
में रोज़े से हासिल होनी चाहिए। जिस तरह रोटी से जिस्मानी ताक़
उस वक़्त तक नहीं हासिल हो सकती, जब तक कि वह मेदे में जाकर
हज़म न हो और ख़ून बनकर जिस्म की रग-रग में न पहुंच जाये, उ
तरह रोज़े से भी रूहानी ताक़त उस वक्त तक हासिल नहीं होती
तक कि आदमी रोज़े के मक़सद को पूरी तरह समझे नहीं और अ
दिल व दिमाग़ के अन्दर उसको उतारने और ख़याल, नीयत, इर
और अमल सब पर छा जाने का मौक़ा न दे।

यही वजह है कि अल्लाह ने क़ुरआन में रोज़े का हुक्म देने के
फ़रमाया—

"तुम पर रोज़ा फ़र्ज़ किया जाता है, शायद कि मुत्तक़ी और
परहेज़गार बन जाओ।"

यह नहीं फ़रमाया कि इससे ज़रूर मुत्तक़ी और परहेज़गार बन जाओ
इसलिए कि रोज़े का यह नतीजा तो आदमी की समझ-बूझ और उ
इरादे पर मौक़ूफ़ है। जो इसके मक़सद को समझेगा और उसके
से असल मक़सद को हासिल करने की कोशिश करेगा, वह
या बहुत मुत्तक़ी बन जायेगा, मगर जो मक़सद ही को न समझेगा
उसे हासिल करने की कोशिश न करेगा उसे कोई फ़ायदा हासिल
की उम्मीद नहीं।

नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने मुख़तलिफ़ तरीक़ों से
के असल मक़सद की तरफ़ ध्यान दिलाया है और यह समझाय
कि मक़सद से ग़ाफ़िल होकर भूखा-प्यासा रहना कुछ मुफ़ीद नहीं।
कि फ़रमाया—

"जब किसी ने झूठ बोलना और झूठ पर अमल करना ही
न छोड़ा तो उसका खाना और पीना छुड़ा देने की अल्लाह
को कोई हाजत नहीं।"

दूसरी हदीस में है कि प्यारे नबी सल्ल० ने फ़रमाया—

बहुत से रोज़ेदार ऐसे हैं कि रोज़े से भूख-प्यास के सिवा उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता और बहुत से रातों के खड़े होने वाले ऐसे हैं कि इस क़ियाम से रतजगे के सिवाय उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता।"

इन दोनों हदीसों का मतलब बिल्कुल साफ़ है। इनसे साफ़ तौर पर मालूम होता है कि सिर्फ़ भूखा और प्यासा रहना इबादत नहीं है, बल्कि असल इबादत का ज़रिया है और असल इबादत है ख़ुदा के ख़ौफ़ की वजह से ख़ुदा के क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी न करना और ख़ुदा की मुहब्बत की वजह से हर उस काम के लिए शौक से लपकना जिसमें महबूब की ख़ुशनूदी हो और जहां तक मुम्किन हो नफ़्सानियत से बचना। इस इबादत से जो आदमी ग़ाफ़िल रहा उसने बेकार ही अपने पेट को भूख और प्यास की तकलीफ़ दी। अल्लाह तआला को इसकी ज़रूरत कब थी कि बारह-चौदह घंटों के लिए उससे खाना-पीना छुड़ा देता। रोज़े के असल मक़्सद की ओर प्यारे नबी सल्ल० इस तरह ध्यान दिलाते हैं कि –

"जिसने रोज़ा रखा, ईमान और एहतिसाब के साथ, उसके तमाम पिछले गुनाह माफ़ कर दिए गए।"

ईमान का मतलब यह है कि ख़ुदा के बारे में एक मुसलमान का जो अक़ीदा होना चाहिए, वही अक़ीदा दिमाग़ में पूरी तरह ताज़ा रहे और 'एहतिसाब' का मतलब यह है कि आदमी हर वक़्त अपने ख़्यालों और अपने कामों पर नज़र रखे कि कहीं वह अल्लाह की मरज़ी के ख़िलाफ़ तो नहीं चल रहा है। इन दोनों चीज़ों के साथ जो आदमी रमज़ान के पूरे रोज़े रख लेगा वह पिछले गुनाह बख़्शवा ले जायेगा। इसलिए कि अगर वह कभी सरकश व नाफ़रमान बन्दा था भी तो अब उसने अपने मालिक की तरफ़ पूरी तरह रुजू कर लिया जैसा कि नबी सल्ल० ने फ़रमाया कि–

"गुनाह से तौबा करने वाला ऐसा है जैसे उसने गुनाह किया

ही न था।"

दूसरी हदीस में आया है–

"रोज़ा ढाल की तरह है (कि जिस तरह ढाल दुश्मन के वार से बचाने के लिए है, उसी तरह रोज़ा भी शैतान के वार से बचने के लिए है) इसीलिए जब कोई आदमी रोज़े से हो तो उसे चाहिए (कि इस ढाल को इस्तेमाल करे और) दंगे-फ़साद से परहेज़ करे। अगर कोई आदमी उसको गाली दे या उससे लड़े तो उसको कह देना चाहिए कि भाई ! मैं रोज़े से हूं, मुझ से यह उम्मीद न रखो कि तुम्हारे इस मशाले में हिस्सा लूंगा।"

दूसरी हदीसों में हुज़ूर सल्ल० ने बताया है कि रोज़े की हालत में आदमी को ज़्यादा नेक काम करने चाहियें और हर भलाई का शौक़ीन बन जाना चाहिए। ख़ासकर उस हालत में उसके अन्दर अपने दूसरे भाइयों की हमदर्दी का जज़्बा तो पूरी शिद्दत के साथ पैदा हो जाना चाहिए क्योंकि वह ख़ुद भूख-प्यास की तकलीफ़ में मुब्तिला होकर ज़्यादा अच्छी तरह महसूस कर सकता है कि दूसरे ख़ुदा के बन्दों पर ग़रीबी और मुसीबत में क्या गुज़रती है। हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) की रिवायत है कि ख़ुद हज़रत मुहम्मद सल्ल० रमज़ान में आम दिनों से ज़्यादा मेहरबान और शफ़ीक़ हो जाते थे। कोई मांगने वाला उस ज़माने में हुज़ूर सल्ल० के दरवाज़े से ख़ाली न जाता था और कोई क़ैदी उस ज़माने में क़ैद न रहता था। एक हदीस में आया है कि हुज़ूर ने फ़रमाया–

"जिसने रमज़ान में किसी रोज़ेदार को इफ़्तार कराया, तो यह उसके गुनाहों की बख़्शिश का और उसकी गर्दन को आग से छुड़ाने का ज़रिया होगा और उसको उतना ही सवाब मिलेगा जितना उस रोज़ेदार को रोज़ा रखने का सवाब मिलेगा, बग़ैर इसके कि रोज़ेदार के सवाब में कोई कमी हो।"